International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 02-06-2022, Accepted: 18-06-2022, Published: 04-07-2022
Volume 8, Issue 4, 2022, Page No. 7-10

व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में योग सूत्र की सार्थकताः स्वामी विवेकानन्द का चिन्तन

प्रवेश जाटव[1], गणेश शंकर[2]
[1] शोध छात्र, योग शिक्षा विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश, भारत
[2] शोध निर्देशक, योग शिक्षा विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश, भारत

सारांश
हर एक व्यक्ति वर्तमान में तकनीकी और भौतिकता के दलदल में फंसकर अपने वास्तविक स्वरूप को भूल गया है। बड़ती हुई आधुनिकता, सांसारिक सुख सुविधायें तथा साधनों की बढ़ोत्तरी ने व्यक्ति को इतना अंधा बना दिया है कि उसके वास्तविक स्वभाव पर संशय प्रतीत होने लगता है। मनुष्य इस जंजाल में इतना फंस गया है कि वह स्वयं के लिए ही युद्ध कर रहा है और फिर विलाप करता रहता है। आज व्यक्ति ने भले ही स्वयं को सुख साधनों से परिपूर्ण कर लिया हो, परंतु उसे सोने अर्थात निद्रा के लिए दवाओं की आवश्यकता पड़ने लगती है। व्यक्ति को इस संसार का सामना करने के लिए अत्याधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है और इस ऊर्जा को प्राप्त करने के लिए मनुष्य कई प्रकार की दवायें ले रहा है, जिनसे उसका शरीर तथा मन पूर्ण रूप से शिथिल हो गया है। इन सभी को दूर करने के लिए, एक व्यवस्थित जीवन जीने के लिए व्यक्ति संजीवनी की तलाश में है। जो उसे समस्त प्रकार के तनाव, अवसाद से दूर कर एक अच्छे और व्यवस्थित जीवन जीने की शक्ति और कला प्रदान करे। योग ही वह संजीवनी है जिसके द्वारा मनुष्य तनाव और अवसाद के बन्धन से मुक्ति पा सकता है। वर्तमान समय में व्यवस्थित जीवन जीने व एक दिनचर्या को बनाये रखने की अत्यधिक आवश्यकता है। इस योग को व्यवस्थित रूप से जनमानस के उपयोग हेतु बनाने का कार्य महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र के द्वारा इस समाज को दिया। इसी योग सूत्र को सरल एवं व्यवहारिकता देने व प्रत्येक मनुष्य का जीवन सरल बनाने का महत्वपूर्ण कार्य स्वामी विवेकानन्द ने किया।

मूल शब्दः योगसूत्र, व्यक्तिगत, सामाजिक, स्वामी विवेकानन्द, यम–नियम

प्रस्तावना
महर्षि पतंजलि ने जिस योग सूत्र की रचना की उसका स्वामी विवेकानन्द ने अध्ययन किया और वर्तमान समय में इस योग सूत्र की आवश्यकताओं पर स्वाध्याय करते हुये अपना भाष्य राजयोग के रूप में लिखा। वर्तमान समय में कई स्थानों पर योग केन्द्र खोले जा चुके है और कुछ खुल रहे है। इनका उद्देश्य है प्रत्येक व्यक्ति को शारीरिक तथा मानसिक रूप से हो रहे तनाव से मुक्ति दिलाना।
आज समाज का हर एक वर्ग इनकी सहायता से स्वयं को उच्च शिखर की ओर ले जाने का प्रयास कर रहा है। स्वामी विवेकानंद कहते है कि साधना हेतु मनुष्य में शारीरिक व मानसिक दुर्बलतायें स्वीकार नहीं है। अस्वस्थ शरीर, दुर्बल मानसिकता वाला मनुष्य क्या साधना करेगा। मनुष्य के भीतर अद्भुत ऊर्जा का भण्डार है। योग के द्वारा अगर मनुष्य इसकी अनुभूति करे तो मनुष्य की समस्त दुर्बलतायें कारण सहित समाप्त हो जायेगी। प्रत्येक व्यक्ति का अंतिम उद्देश्य ब्रह्म का साक्षात्कार अर्थात परमात्मा को प्राप्त करना है, यही मोक्ष की अवस्था है। इस हेतु व्यक्ति का शारीरिक व मानसिक रूप से बलिष्ठ होना अतिआवश्यक है।

व्यक्तिगत जीवन में
व्यक्तिगत जीवन में पातंजल योग सूत्र की प्रासंगिकता को समझने से पूर्व यह समझना अधिक आवश्यक है कि व्यक्तित्व है क्या? व्यक्तित्व की जब हम बात करते है तो इसके दो कारक हमें प्रत्यक्ष दिखते है शारीरिक और मानसिक। हर एक व्यक्ति को जीवन यापन के लिए शारीरिक रूप से स्वस्थ रहने की आवश्यकता होती है। इस संसार के प्रत्येक क्षेत्र में क्रिया करने हेतु शरीर की आवश्यकता होती है। ईश्वर ने हमें इतनी शक्ति दी है कि हम बड़े से बड़ा कार्य करने में भी सक्षम है। किंतु यह तभी हो सकता है जब मनुष्य शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ व वलिष्ठ हो। मानसिक अस्वस्थता के कारण ही ज्यादातर व्याधियाँ जन्म लेती है। मन से ही शरीर भी अस्वस्थ हो जाता है। मानसिक रूप से दुर्बल होने पर व्यक्ति के अन्दर दुर्बल विचारों का उदय होता है। इन दुर्बल विचारों के माध्यम से व्यक्ति का शारीरिक व मानसिक रूप से पतन होना प्रारम्भ हो जाता है। मन की अवस्था समस्त इन्द्रियों से ऊपर है, यह परमात्मा का ही अंश है, इसको अधिक सिद्धियाँ व शक्तियाँ प्राप्त है। इसलिए हमारा प्रयास इसे स्वस्थ रखने का होना चाहिए। जब मन प्रसन्न भाव से रहता है तो बुद्धि भी सात्विक अवस्था में होती है।

मन को प्रसन्न रखने के साधन –

''योगश्चित्त वृत्ति निरोधः''[1]

चित्त में उठने वाली वृत्तियों का निरोध करना योग है। अभ्यासी के चित्त में आने वाले समस्त विचार रूक जाते है तो उसका चित्त स्वच्छ और निर्मल हो जाता है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार मन का सम्पूर्ण विनाश तब होता है जब अभ्यासी पूर्ण रूप से मन की प्रक्रिया को त्याग दे। इस प्रकार मन का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। इससे यह समझ आ जाता है कि चित्त का आशय कया है? वह तो मन का ही उपादान स्वरूप है और विचार वह तरंगे है जो चित्त में उतार चढ़ाव अनुभव करती है। जैसे ही तरंगे बाहरी कारणों से प्रभावित होती है वैसे ही इनमें उतार–चढ़ाव आने लगते है, जिसे जगत के रूप में हम देखते है। यह जगत वृत्तियों की ही समष्टि है।[2] मन को निश्चल स्वरूप देने के लिए जब इन वृत्तियों को हम त्याग देते है तब हमें वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होता है।

व्यक्तिगत जीवन में नियम

हर एक मनुष्य के लिए स्वयं का विकास और आध्यात्मिक उन्नति के साथ ही उसका कर्तव्य होता है, सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरा करना। जब तक अभ्यासी समाज के नियमों का पालन नहीं करता तब तक वह अपने लक्ष्य को पाने में भी असमर्थ होता है। स्वामी विवेकानन्द कहते है कि ''हमारे जीवन में एक बड़ा दोष यह है कि हम लक्ष्य पर ही अधिक ध्यान देते है, हमारे लिए लक्ष्य इतना अधिक आकर्षण होता है, ऐसा मोहक होता है और हमारे मन पर इतना प्रभाव डालता है कि उसकी प्राप्ति के साधनों की बारीकियां हमारी नजर से निकल जाती है।''[3] इन बारीकियों को समझने एवं व्यक्तिगत जीवन को उच्चतम शिखर पर ले जाने हेतु महर्षि पतंजलि ने नियम को परिभाषित किया। नियम के पाँच मुख्य अंग है। मनुष्य इनके पालन से स्वयं का विकास कर सकता है।

''शौच संतोष तपः स्वाध्ययेश्वरप्रणिनि नियमाः''[4]

अर्थात् शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान यह नियम के पांच अंग है। शौच का अर्थ है शरीर को आन्तरिक एवं बाह्य रूप से शुद्ध रखना। बाह्य रूप से तो हम शरीर को स्नान आदि से शुद्ध कर लेते है। किन्तु आन्तरिक रूप से स्वच्छता तथा निर्मलता भी आवश्यक है। विचारों की शुद्धता से ही मनुष्य का आचरण सामाजिक होता है। आन्तरिक शुद्धता के विषय में स्वामी विवेकानन्द ने पातंजल योग सूत्र का सन्दर्भ देते हुए मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा आदि की भावना रखने का संदेश दिया क्रमशरू सुखी से मित्रता, दुखी से करुणा, पुण्य आत्माओं में मुदिता तथा पापियों से उपेक्षा करना चाहिए। इस प्रकार की भावना रखने से हमारे आन्तरिक शरीर व मन की शुद्धता होती है।

संतोष से यह तात्पर्य है कि जीवन यापन के लिए आवश्यकता से अधिक साधनों को एकत्रित नहीं करना चाहिए और न ही इनकी लालसा रखनी चाहिए। क्योंकि लालसा रखने पर वह साधन नहीं मिला तो दुःख उत्पन्न होता है। ईशावास्योपनिषद में सांसारिक उपभोगों का त्याग करने की बात कही गई है यहाँ वर्णन मिलता है कि यह धन किसी का नहीं है इसलिए इसकी लालसा नहीं करना चाहिए।[5] समस्त प्रकार के द्वंद्वों को सहन करना तप कहलाता है। लाभ–हानि, सुख–दुःख, जय–पराजय, मान–अपमान आदि में विचलित न होना ही तप है। तप करने से प्राप्त फल के विषय में स्वामी विवेकानन्द कहते है कि इससे दुरश्रवण और दूरदर्शन जैसी शक्तियाँ हमें प्राप्त हो जाती है।[6] स्वाध्याय के विषय में नन्दलाल दशोरा कहते है कि ''शास्त्रों का अभ्यास करना, मंत्र जप स्वयं का अध्ययन आदि सभी स्वाध्याय कहलाते है।''[7] स्वाध्याय करने से व्यक्ति का मन शांत होता है और वह आत्मसाक्षात्कार के मार्ग पर सतत बढ़ता रहता है। स्वाध्याय करने से एकतान भाव का जन्म होता है और मनुष्य अपने उद्देश्य के प्रति अनुकूल होता है।8 हम नियमित रूप से जो कर्मों को करते है उन्हें पूर्ण रूप से ईश्वर को समर्पित कर देना ही ईश्वर प्राणिधान है। स्वामी विवेकानन्द कहते है कि जब हम स्वयं को ईश्वर के साथ एक्य कर लेते हैं अथवा उनसे जुड़ा हुआ भाव रखते है तो ईश्वर के प्रति समस्त कर्म समर्पण के संकल्प से शीघ्र ही समाधि की पूर्णता होती है।

सामाजिक जीवन में

आधुनिक काल में विज्ञान एवं तकनीकी का विकास हो रहा है तथा दूसरी और सामाजिक संस्कृति में गिरावट आ रही है। इसका लोगों के तन और मन पर चंचलता का प्रभाव अधिक बढ़ रहा है। सामाजिक जीवन के कारक क्या है? सहानुभूति, सहयोग, कल्याण, समर्पण, सेवा आदि। इन समस्त कारकों में इतना परिवर्तन आ गया है कि व्यक्ति समझना ही नहीं चाहता। समाज के वह तत्व जो एक व्यक्ति के स्वास्थ्य के लिए जरूरी है, कमजोर बनते जा रहे है। आज के समय का समाज प्रतियोगितावादी हो गया है। एक परिवार के सदस्य ही एक दूसरे से आगे बढ़ने के लिए प्रतियोगिता कर रहे है। इस प्रकार आपस के संघर्ष से समाज में तनाव जैसी अवस्था बनी हुई है। एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के साथ मधुर व्यवहार नहीं है जिससे वह स्वयं को अकेला अनुभव कर रहा है। उन्हें पूरे समाज में अपनत्व का भाव दिखाई ही नहीं देता, केवल औपचारिक स्वभाव ही समाज में देखने को मिलते है।

सामाजिक सम्बन्धों से तैयार एक जाल ही यह समाज कहलाता है। इन सम्बन्धों के माध्यम से ही मनुष्य सामाजिक नियमों के कर्तव्यों का पालन करता है। इन सम्बन्धों के माध्यम से ही व्यक्ति के भीतर समायोजन की भावना विकसित होती है। जन्म के बाद बच्चे का प्रथम सम्बन्ध माँ से होता है। इसके बाद ही सम्बन्धों की डोर कई लोगों से जुड़ती जाती है। जितने लोगों के साथ उसके सम्बन्ध घनिष्ट होते जाते है उतना ही उसका शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य अच्छा रहता है। वर्तमान समय ऐसा चल रहा है कि इसमें सम्बन्धों में खटास आती जा रही है। सम्बन्धों के नाम पर केवल दिखावा मात्र रह गया है। एक बालक और उसके माता–पिता के बीच जो सम्बन्ध स्थापित होता है उसी पर बालक का समाजीकरण निर्भर रहता है।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार ''मनुष्य की साधुता ही सामाजिक तथा राजनीतिक सर्वविध व्यवस्था का आधार है। पार्लमेन्ट द्वारा बनाये गये कानूनों से ही कोई राष्ट्र भला या उन्नत नहीं होता, वह उन्नत तब होता है, जब वहां के मनुष्य उन्नत और सुन्दर स्वभाव वाले होते हैं।"[9] सार्वभौमिक प्रकार का स्वामी जी का चिन्तन था और इसी आधार पर उनके कृतत्व एवं सिद्धियाँ थी। स्वामी जी का कहना था कि मनुष्य के भीतर संसार की समस्त शक्तियाँ विद्यमान है। स्वामी विवेकानन्द

ने वेदान्त पर भाषण देते हुये मनुष्य के विषय में कहा था। ''समग्र जगत तुम ही हो, यह ब्रह्माण्ड तुम्हारा शरीर है, तुम ही व्यक्त और अव्यक्त जगत दोनों ही हो। तुम ही जगत की आत्मा हो तथा तुम ही उसका शरीर भी हो, तुम ही उद्भिद हो, तुम ही खनिज हो, तुम ही सब कुछ हो समस्त व्यक्ति जगत तुम ही हो।''[10] पूरे संसार को एक माला में पिरोने का कार्य स्वामी जी ने इसी संदेश के माध्यम से किया था।

आज के आधुनिक काल में सामाजिक जीवन किस प्रकार का हो और इसे हर एक व्यक्ति अपने जीवन में सार्थक व उपयोगी किस प्रकार बना सकता है इस पर महर्षि पतंजलि ने आष्टांगिक मार्ग में यम का स्वरूप बतलाया। इसी सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द ने वर्तमान के जनमानस हेतु यम की व्याख्या सरल और सुलभ रूप में की है–

''अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः''[11]

अर्थात अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह यह सामाजिक जीवन हेतु महर्षि पतंजलि ने जनमानस के लिए अनमोल रचना की है।

1. अहिंसा

किसी भी जीव एवं प्राणी को मानसिक तथा शारीरिक रूप से कष्ट न देना ही अहिंसा है।12 इसी सन्दर्भ में नन्दलाल दशोरा कहते है कि केवल शारीरिक रूप से किसी को दुःख पहुँचाना ही हिंसा नहीं है। अपितु शरीर, मन, वचन से भी किसी भी प्राणी को दुःख न देना ही अहिंसा है। अहिंसा का व्रत जब हम धारण कर लेते है तो हमें किस प्रकार का फल प्राप्त होता है इस पर स्वामी विवेकानन्द कहते है कि ''जब कोई भी मनुष्य अहिंसा का व्रत नियमित रूप से पालन करते हुए उसकी चरम स्थिति तक पहुँचता है तो उस मनुष्य के समक्ष जो भी हिंसक प्राणी आता है वह भी शांत प्रवृत्ति का हो जाता है। शेर और बकरी भी उसके सामने खेलने लगते है। अहिंसा रूपी व्यवहार के साथ समाज के प्रति हमारा व्यवहार होता है तो निश्चित ही हम सफल हो सकेंगे।''13

2. सत्य

इन्द्रियों तथ अन्तरूकरण के द्वारा जो निश्चित किया गया हो, जो सभी के कल्याण में हो, कपटता को त्यागकर सुन्दर शब्दों में जस की तस प्रकट करना ही सत्य है। मिथ्या भाषणों का प्रचार प्रसार न करना ही सत्य है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार ''जब सत्य की शक्ति तुम्हारे अन्दर समा जाती है तब स्वप्न में भी व्यक्ति असत्य नहीं बोलता है। इस प्रकार व्यक्ति के मन, वचन व कर्म से सत्य ही बोला जाता है। इसकी शक्ति इतनी तीव्र होती है कि व्यक्ति जो बोलता है वही सत्य हो जाता है।''[14]

3. अस्तेय

स्वयं की कोई वस्तु न होने पर उस वस्तु के प्रति मोह तथा लालसा का भाव न रखना ही अस्तेय है। अस्तेय का वास्तविक अर्थ चोरी न करना है। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य को मन, वचन, कर्म से तथा व्यवहारिक रूप से चोरी नहीं करना ही अस्तेय कहलाता है। श्री स्वामी ओमानन्द तीर्थ कहते है कि ''अन्याय पूर्वक किसी के धन, द्रव्य अथवा अधिकार आदि का हरण करना स्तेय है। राजा का प्रजा के नागरिक का अधिकार दबाना, ऊँचे वर्ण वालों या धन पतियों का नीचे वर्णवालों और निर्धनों के सामाजिक तथा धार्मिक अधिकारों को छीनना स्तेय है। अधिकारीगणों का रिश्वत लेना, दुकानदारों का निश्चित या उचित मूल्य से ज्यादा दाम लेना अथवा तोल में कम देना तथा चीजों में मिलावट करना इत्यादि स्तेय है। इस प्रकार किसी वस्तु को प्राप्त करने का मूल कारण लोभ और त्याग है। इस हेतु योगी का किसी वस्तु में राग होना ही स्तेय समझना चाहिए। इन सभी को पूर्ण रूप से त्याग देना ही अस्तेय है।''[15] इस सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द कहते है कि प्रकृति से जितना भागोगे उतना ही वह तुम्हारे पास आयेगी, किन्तु तुम उसकी किंचित भी चिन्ता नहीं करते, तो वह तुम्हारी सेवक बन कर रहेगी। समाज में रहकर अगर व्यक्ति अस्तेय को अपने जीवन का अंग बनाता है, इसका अनुसरण करता है तो समाज की व्यवस्थाओं को ठीक रखा जा सकता है। समाज के अन्दर समरसता का भाव पैदा किया जा सकता है।

ब्रह्मचर्य

मनुष्य का काम वृत्तियों से दूर रहना तथा ब्रह्म के समान आचरण करना ही ब्रह्मचर्य है। पण्डित हरिकृष्ण शास्त्री दातार के अनुसार कर्मेन्द्रियाँ तथा ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा काम रूपी विकारों का काम विषयों का एवं काम प्रवृत्तियों को हमेशा के लिए त्याग देना तथा सात्विक भाव रखना, सात्विक भोजन करना ही ब्रह्मचर्य कहलाता है।[16] ब्रह्मचर्य से मिलने वाली शक्ति के विषय में स्वामी विवेकानन्द कहते है कि जो मनुष्य ब्रह्मचर्य का व्रत धारण कर लेता है उसके मस्तिष्क में प्रबल शक्ति एवं महती इच्छाशक्ति संचित रहती है।[17] इसके साथ ही इसके पालन से वीर्य लाभ होता है।

अपरिग्रह

स्वार्थ भाव के साथ अत्याधिक धन एवं अनावश्यक संसाधनों को एकत्रित करना परिग्रह कहलाता है। अगर हमारा व्यवहार इसके विपरीत रहता है अर्थात आवश्यक संसाधनों को ही हम अपने पास रखते हैं तो वह अपरिग्रह कहलाता है। जब हम अत्यधिक संसाधनों का संग्रह करते है तो उससे हमारा मन भी चचंल रहता है। मन के भीतर दुर्गुणों का प्रवेश होता है। इस सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द कहते है कि जब मनुष्य परिग्रह का त्याग कर देता है तो उसका मन शुद्ध हो जाता है तथा इससे मनुष्य को जो फल प्राप्त होते है उससे पूर्वजन्म की स्मृति का विकास होता है।[18] यही कारण है कि साधक सम्पूर्ण रूप से अपने लक्ष्य के प्रति आरूड़ रहता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार मनुष्य व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में नियम तथा यम के सभी अंगों को अपने व्यवहार में लाने का प्रयास करता है तो वह अपने सम्पूर्ण चरित्र को सार्थक बना सकता है। आज के इस आधुनिक युग में जो परिस्थितियाँ हम देख रहे है हर एक मनुष्य तनाव एवं अवसाद जैसे विकारों से जूझ रहा है। इनको दूर करने के लिए महर्षि पतंजलि कृत नियम के पालन से व्यक्तिगत जीवन को सही मार्ग दिखाया जा सकता है। इसी प्रकार यम के पालन से सामाजिक परिस्थितियों को व्यवस्थित किया जा सकता है। स्वयं का परिवार से जुड़ना एवं समाज से जुड़ना तनाव को त्यागने का साधन है। जब व्यक्ति इनको अपने स्वभाव में उतारता है तो वह प्रेममय वातावरण के साथ पूर्ण जीवन शांत भाव से व्यतीत कर सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. पातन्जल योग दर्शन, 1/2
2. स्वामी विवेकानन्द, राजयोग, रामकृष्ण मठ प्रकाशन, नागपुर सं. 1955, पृ.102
3. स्वामी विवेकानन्द, सार्वलौकिक नीति तथा सदाचार, रामकृष्ण मठ प्रकाशन, नागपुर, सं. 2012, पृ.79
4. पातन्जल योग दर्शन, 2/32
5. मनोज विश्नोई, उपनिषद् सार संग्रह, किताब महल, नई दिल्ली, सं. 2019, पृ.15
6. स्वामी विवेकानन्द, राजयोग, रामकृष्ण मठ प्रकाशन, नागपुर सं. 1955, पृ.179
7. नन्दलाल दशोरा, पातंजल योगसूत्र, रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार, सं. 1997, पृ.116
8. स्वामी हरिहरानन्द, पातंजल योग दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, वाराणसी, सं. 1980, पृ.262
9. स्वामी विवेकानन्द, सार्वलौकिक नीति तथा सदाचार, रामकृष्ण मठ प्रकाशन, नागपुर, सं. 2012, पृ.1
10. वेदप्रकाश सचदेव, राष्ट्रीय जागरण में स्वामी विवेकानन्द का योगदान, कर्मण्य तपोभूमि सेवा न्याय प्रकाशन, ग्वालियर, सं. 2007, पृ.141
11. पातन्जल योग दर्शन, 2/30
12. नन्दलाल दशोरा, पातंजल योगसूत्र, रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार, सं. 1997, पृ.104
13. स्वामी विवेकानन्द, राजयोग, रामकृष्ण मठ प्रकाशन, नागपुर सं. 1955, पृ.176
14. वही, पृ.176
15. श्रीस्वामी ओमानन्द तीर्थ, पातंजल योग प्रदीप, गीताप्रेस गोरखपुर, सं.2074, पृ.418
16. पण्डित हरिकृष्ण शास्त्री दातार, योग सिद्धान्त एवं साधना, चौखम्बा विद्या भवन, बनारस, सं.2013, पृ.49
17. स्वामी विवेकानन्द, राजयोग, रामकृष्ण मठ प्रकाशन, नागपुर सं. 1955, पृ.177
18. वही, पृ.177